परमार्थ सार ॥

श्रीभगवान् शंकराचार्य रचित

जिसमें

परब्रह्मपरमेश्वर ध्यान विषयक अत्युत्तम मार्ग वर्णित है
डिपुटी कमश्नरी लखनऊ के सरदफ्तर बाबू काशी-
नाथ चटरजी ने विद्वज्जनों के उपकारार्थ पण्डित
केवलदीन से टीका कराके प्रकाश किया

स्थान लखनऊ

श्रीमुंशीनवलकिशोरजी के यन्त्रालय में छपा ॥

फरवरी सन् १८७६ ई० ॥

श्रीगणेशायनमः ॥

परमार्थसारका भूमिका ॥

प्रकट होकि सम्पूर्ण मनुष्य जो अज्ञानांधकार में पतित होकार अति निकटप्राप्त आल्हाद स्वरूप सर्व सारांश यथार्थ पदार्थ को विचार नेत्रसे दृष्टिकार प्राप्त न होकार नाना प्रकार दुःखसार संसार में मोहको प्राप्त होके चित्त की उद्विग्नता वनिरानन्दता लाभ करते हैं तिनके उपकारार्थ चटरजी श्री बाबू काशी नाथजीने श्रीभगवान् शंकराचार्य कृत परमार्थसार ग्रन्थ पण्डित केवलदीन से भाषा टीका कराके। मुंशीनवलकिशोरके यन्त्रालय में छपवाया, कि इसे पढ़ कर सबको ज्ञानलाभ होय ॥

श्री काशीनाथ चटर्जी सरटफ़्तर
डिपुटी कमिश्नरी
लखनऊ

इति

श्रीगणेशायनमः ॥

परमार्थसार ॥

श्लो०—परं परस्याः प्रकृतेरनादिमेकान्निविष्टं बहुधा गुहासु ।
सर्वालयं सर्वचराचरस्थं त्वामेव विष्णुं शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

श्रीरस्तु परा प्रकृति जो माया तिहितेपरे औ एक सजातीय विजातीय स्वगत भेद रहित औ अनादि औ गुहा जो देव मनुष्यादि देह तिन विषे बहुधा कहे न्यूनाधिक भाव करिके स्थित है दिखाहे सर्वालय कहे सबका स्थान है औ सब चराचर विषे स्थित है ऐसे जो तुम विष्णु हौ तिनके मैं शरण को प्राप्त हौं ॥ १ ॥

आत्मानुरागोनिखिलोपि लोकाकर्णो पिनाचामति नैव चतेच ।
आश्चर्यमेतन्मृगतृष्णिकाभे भोगानुरागो रमतेस्वपैव ॥ २ ॥

समुद्र तुल्य आत्मा विषे सब लोक टिका है नतौ स्वादुनेह न देखै आश्चर्य कौ बात है झूठे संसार मे वृथा रमि रहा है ॥ २ ॥

गर्भवासजन्मजरामरणाविप्रयोग दुःखाब्धौ ।
जगदालोक्यनिमग्नं गुरुमाह शिष्यः प्रांजलिः ॥ ३ ॥

गर्भवास जन्म बुढापा मरना बिछुरना ए दुःख समुद्र विषे बूडा जगतको देखिके शिष्य हाथ जोरिके गुरु से बोलो ॥ ३ ॥

त्वं मां गवेद वेत्ता भेत्ता संशयगणस्य सत्यवक्ता ।
संसारार्णवतरणोपायं पृच्छामि त्वां भगवन् ॥ ४ ॥

हे गुरो तुम मागवेद को जानते हो औ संदेहको दूरि करने वाले हो सत्य बोलते हो सो संसार समुद्र से छूटनेका उपाय पूछता हौं सो कहिये ॥ ४ ॥

दीर्घेऽस्मिन् संसारे संसरतः कस्य केन संबंधः ।
कर्मशुभाशुभपाकान्यनुभवति गतागतैर्विवशः ॥ ५ ॥

बड़ाभारी संसार तिसमें जन्म मरण कोपायके जो घूमिरहेहैं तिनमें के हिके साथ केहिका संबंधहै औ कर्म केपुण्य पाप फलको इह संसार मे चलि फिरिके कौन भोगकर्ता है ॥ ५ ॥

कर्मगुणजालबद्धोजीवस्संसरतिकोशकारइव ।
मोहांधकारगहनात्तस्यकथंबंधनान्मोक्षः ॥ ६ ॥

कर्म रूप सुतरीके जालमें जीवबंधा हैसो संसार मेंसुखदुःख भोगकरता है जैसे कुशहरी का कीडा मकान बनायके बंधिजाता हैसोमोह अंधकार रूप बंधनसे कैसे छूटे सो कहो । ६ ॥

गुणकर्मविभागज्ञोधर्माधर्मैर्निबंधकोभवतः ।
इतिगदितंपूर्ववाक्यैःप्रकृतिंपुरुषंचमेब्रूहि ॥ ७ ॥

जोकोई गुणकर्म केविभाग को जानताहै तेहिका धर्म अधर्म बंधन नहीं करते हैं यह बात महात्मा लोग कहिगये हैं सो मायाव जीव का बिभाग कहो ॥ ७ ॥

चिन्ताधारीभगवान्पृष्टःशिष्येणतंसहोवाच ।
विदुषामप्यतिगहनंवक्तव्यमिदंशृणुतथापित्वं ॥ ८ ॥

ऐसा शिष्यका वचन सुनिके भगवान् शेषजी शिष्य सोंबोले हेशिष्ययह बात विद्वानों के जानने योग्य नहीहै तथापि तुम सुनो मैंकहताहूं ॥ ८ ॥

सत्यमिवजगदसत्यंमूलप्रकृतेरिदंकृतंयेन ।
तंप्रणिपत्योपेन्द्रंवक्ष्येपरमार्थसारमिदम् ॥ ९ ॥

माया का किया हुवा यह असत्य संसार कोजिसने सत्य कर दिया ऐसे उपेन्द्र अर्थात् विष्णु को प्रणाम करके यह मुख्य सारांश वर्णन करता हूं ॥

अव्यक्ता दण्डमभूदण्डाद्ब्रह्माततःप्रजासर्गः ।
मायामयीप्रकृतिःसंचीयतेद्वयंपुनःक्रमशः ॥ १० ॥

मायासे अण्ड उत्पन्न भया अण्डमेंब्रह्म उत्पन्न भये तिनसे प्रजा उत्पन्न होते भये फिरि मायायह जीवहोंजाती है यही क्रमसदा चलाजाताहै ॥ १० ॥

मायामयोप्यचेतोगुणकारणगणःकरोतिकर्माणि ।
तदधिष्ठातादेवोऽप्यचेतनोनकरोतिकिंचिदपि ॥ ११ ॥

मायारचित गुणजो सत्वादिक तिन करिके युक्तजो इंद्रिया हैते हैं अचेत नपैकर्म करती हैं औइद्रियो का मालिक जीव सो चेतन्य भी है कुछ नहीं करता हे ॥ ११ ॥

यद्वदचेतनमपिसन्निकटस्थेमामकैभ्रमतिलोहं ।
तद्वत्कारणसमूहश्चेष्टतेचिदधिष्ठितेदेहे ॥ १२ ॥

ऐसे लोहा जड है अबचुवक पत्थर लोहा के समीप जाता हैतव लोहा चलता है इसी तरह से चैतन्य युक्त देह विषे इंद्रिया सब काम करती है ॥ १२ ॥

यद्वत्सवितर्युदितेकरोतिकर्माणिजीवलोकोयं ।
नचतानिकरोतिरविर्नकारयतितद्वदात्मापि ॥ १३ ॥

ऐसे सूर्य के उदय विषे सब जीव काम करते हैं सूर्य कुछ काम नहीं करते न करवाते हैं ऐसे ही अत्मा कुछ नहीं करता इन्द्रिया काम करि रही है ॥ १३॥

मनसोऽहंकारविमूर्छितस्यचैतन्यविबोधितस्येह ।
पुरुपाभिमानसुखदुःखभावनाभवतिमूढस्य ॥ १४ ॥

अहङ्कार करि मूर्छित चैत्यन्य करि जगाया गया अज्ञानी मन को पुरपाभिमान रूप सुख दुःख भावना होती है ॥ १४ ॥

कर्ताभोक्ताद्रष्टास्मिकर्मणांपुण्यमादीनां ।
इतितत्स्वभावविमलोऽभिमन्यतेसर्वगोप्यात्मा ॥ १५ ॥

स्वभावे ते निर्म्मल औ सब के विषे वर्त्त मान ऐसाजो आत्मा पुण्य पाप रूपजो कर्म तिनका कर्ता वि भोक्ता व देखैया मैहो यह अपना को मानता है ॥ १५ ॥

नानाविधवस्तूनांवर्णान्धत्तेयथाऽमलः ।
स्फटिकःतद्वद्गुणाधैर्गुणभावितस्वभावंविभुर्धत्ते ॥ १६ ॥

ऐसे मत्र काल मोस्फटिक पत्थर सुपेदै है औ नाना प्रकार के नील पीतादि रंगको धारण कर्ता है तैसे ही शुद्ध आत्मा गुण युक्त जो उपाधि देह है तिनके भावको धारण करि लेता है ॥ १६ ॥

गच्छतिगच्छतिसलिलेदिनकरबिंबस्थितेस्थितंयाति ।
अंतःकरणेगच्छतिगच्छत्यात्मापितद्वदिह ॥ १७ ॥

जैसे जलके चलते हुये सूर्य का बिंब चलताहै जलके स्थित होते स्थिति को प्राप्त होता है तैसेही आत्मा जोजीव सो मनके चलते हुये चलताहै मनके स्थिर भये स्थित होही जाता है ॥ १७ ॥

राहुरदृश्योपियथाशशिबिंबस्थःप्रकाशतेजगति ।
सर्वगतोपितथात्माबुद्धिस्थोपिदृश्यतामेति ॥ १८ ॥

ऐसे राहु नहीं देखि परता है वै चन्द्रमा के बिंबमेजाय केजगत मेदेखि परता है तैसेही आत्मा सर्व गत है बुद्धि बिषे स्थित होता है तब देखि परता है ॥ १८ ॥

सर्वगतंतन्निरूपमद्वैतंतच्चचेतसागम्यं ।
यद्बुद्धिगतंब्रह्मोपलभ्यतेशिष्यवेद्यंतत् ॥ १९ ॥

सो सर्व्व गत आत्मा चित्त करिके जाना जाता है कैसा जिसका दूसरा नहीं औ उपमा नहीं है जो बुद्धि में गत आत्मा सोई ब्रह्म जानो हे शिष्य ॥ १९ ॥

आदर्शेमलरहितेयद्वद्रूपंविचिन्वतेलोकः ।
आलोकयतितथात्माविशुद्धबुद्धौस्वमात्मानम् ॥ २० ॥

ऐसे निर्मल सीसा बिषे सब लोग अपना रूप देखते हैं इसी तरह यह आत्मा जीव विशुद्ध बुद्धि बिषे अपने शुद्ध रूपको देखता है ॥ २० ॥

बुद्धिमनोऽहंकारास्तन्मात्रेन्द्रियगणाःसभूतगणाः ।
संसारसर्गपरिरक्षणक्षयःप्रागताहेयाः ॥ २१ ॥

बुद्धि मन अहंकार शब्दादिक विषय इन्द्रिया पच महा भूत संसार की उत्पत्ति रक्षा प्रलय एसब माया रचित हैं इसी से त्याज्य हैं ॥ २१ ॥

धर्माऽधर्मौसुखदुःखकल्पनास्वर्गनरकवासश्च ।
उत्पत्तिनिधनवर्णाश्रमाःनसंतीहपरमार्थे ॥ २२ ॥

परमात्मा के बिषे धर्म अधर्म सुख दुख स्वर्ग नरक बास उत्पत्ति नाश वर्णाश्रमयेकोई नहीं हैं ॥ २२ ॥

मृगतृष्णायामुदकं शुक्तौ रजतं भुजंगो रज्ज्वां ।
तैमिरिकचन्द्रयुगवद्भ्रांतमखिलं जगद्रूपं ॥ २२ ॥

यह जगत् सब एक भ्रम रूपहै जैसे मृगतृष्णामे जल जैसे सूतीके विषे चांदी रज्जुविषे सर्प तिमिरीके जैसे दो चन्द्रमा येसब मिथ्या हैं ऐसे आत्मा विषे जगत् भ्रांतिमात्रे है ॥ २२ ॥

यद्वद्दिनकर एको विभाति सलिलाशयेषु सर्वेषु ।
तद्वत्सकलोपाधिष्ववस्थितो भाति परमात्मा ॥ २३ ॥

ऐसे एक सूर्य जितने जलपात्र है तिनविषे सबमे प्रतिबिंब होताहै तैसे परमात्मा चेतनोदेह हैं तिन सब विषे स्थित हैं ॥ २३ ॥

खमिव घटादिष्वंतर्बहिः स्थितं ब्रह्म सर्वपिंडेषु ।
देहोऽहमित्यात्मनि बुद्धिः संसारबंधाय ॥ २४ ॥

ऐसे घटादिकों विषे व घटादिकों के बाहिर आकाश सबमेहै ऐसेही सब देह न विषे ब्रह्म व्याप्त है आत्मा के विषे मैं देहहो यह बुद्धि बंधन को करती है ॥ २४ ॥

सर्वविकल्पहीनः शुद्धो बुद्धोऽजरोऽमरः शान्तः ।
अमलोऽसकृद्विभातश्चेतन आत्माखवद्व्यापी ॥ २५ ॥

जिसमे कोई कल्पना नहीं है शुद्धहै ज्ञानरूप है अजर अमर है शांत है मलरहित है सदा प्रकाशित है ऐसा चैतन्य आत्मा आकाशकी नाई सब में व्याप्त है ॥ २५ ॥

रसफाणितशर्करिकागुडखंडाविकृतयो यथैवेक्षोः ।
तद्वद्वस्थाभेदाः परमात्मन्येव बहुरूपाः ॥ २६ ॥

जैसे ऊखके रस व राब व शक्कर गुड मिश्री ए अनेक विकृतिहैं ऐसेही परमात्माविषे बहुत अवस्था भेद है ॥ २६ ॥

विज्ञानान्तर्यामी प्राणविराट् देहजातिपिण्डांताः ।
व्यवहारास्तस्यासन् एतेऽवस्थाविशेषाः स्युः ॥ २७ ॥

ज्ञान, अन्तर्यामी, प्राण, विराट, देह, जाति, पिण्ड, ए व्यवहार सब आत्माकी अवस्था होतीहैं ॥ २७ ॥

रज्ज्वान्नास्तिभुजंगःसर्पभयंभवतिहेतुनाकेन ।
तद्वद्द्वैतविकल्पभ्रांतिरविद्यानसत्येयम् ॥ २८ ॥

रज्जु मेसर्प है नही सर्प से भयकोन कारण से होतीहै इसीतरह द्वैत विकल्प भ्रमरूविद्या है द्वैत सत्य नही है ॥ २८ ॥

एतदंधकारंयद्नात्मन्यात्मभावनाभ्रांत्या ।
नविंदंतिवासुदेवंसर्वात्मानंनरामूढाः ॥ २९ ॥

भ्रमतेजो देहविषे आत्म मानते है यह अंधकार है मूढ अज्ञानी मनुष्य इसीसे सर्वात्मा वासुदेवको नही पावते है ॥ २९ ॥

प्राणाद्यनंतभेदैरात्मानंसंवितत्येन्द्रजालमिव ।
संहरतिवासुदेवःस्वविभूत्याक्रीडमानइव ॥ ३० ॥

जैसा इन्द्रजाली बहुततरह से इन्द्रजालकी माया देखावताहै तैसे भगवान् प्राण आदि अनेक भेद करिके आत्मा को फैलाइ देताहै फिरि अपनी माया करिके संहार करिलेता है जैसे बालक खेलते है सबचीज फैलाय के फिरि समेटि धरते हैं ॥ ३० ॥

त्रिभिरेवविश्वतैजसप्राज्ञैस्तैरादिमध्यनिधनाख्यैः ।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तैर्भ्रमभूतैराच्छादितंतुरीयम् ॥ ३१ ॥

तुरीयजो सब अवस्था में एक रूप रहता है भगवान् सोई विश्व तैजस प्राज्ञओ आदि मध्य अन्त जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ए भ्रमभूतजो अवस्था हैं तिन करिके मूंदा है ॥ ३१ ॥

मोहयतीवात्मानंस्वमाययाद्वैतरूपयादेवः ।
उपलभ्यतेस्वयमेवगुहागतंपुरुषमात्मानम् ॥ ३२ ॥

ईश्वर द्वैत रूपजो अपनी मायाहै तेहि करिके अपना को ऐसा मोहित करिदेताहै सबकोउ मयगुहा विषे प्राप्त आत्माको अपनेमे प्राप्त होई जाता इसीप्रकार ईश्वर अपनेही आधीन है किसीके वशनही है ॥ ३२ ॥

ज्वलनाद्धूमोद्गतिरिहविविधाकृतिरंबरेयथा ।
तद्वद्विष्णोःसृष्टिःस्वमाययाद्वैतविस्तराभवति ॥ ३३ ॥

जैसे अग्निसे धुवा उत्पन्न भया आकाशविषे जायके नानारूप होइजाता तैसेही विष्णु से उत्पन्न सृष्टि माया करिके द्वैतसे बडे विस्तार युक्त होई जातीहै ॥ ३३ ॥

शांतइवमनसिशांतेहृष्टेहृष्टइवमूढइवमूढे ।
व्यवहारस्थःसपुनःपरमार्थतईश्वरोभवति ॥ ३४ ॥

ईश्वरपरमार्थमे स्थित होयके ईश्वरहै व्यवहार में स्थित होइके व्यवहार ऐसा भासित होताहै सोई वर्णन करताहूं जबमन शांतहोता है तबशांत सा मालूम होताहै जबमन प्रसन्न होता है तब प्रसन्न मालूम होता हैजब मन मूढ होता है तबमूढ मालूम होताहै फिर ईश्वर का ईश्वर ॥ ३४ ॥

जलधरधूमरजोभिर्नमलिनीक्रियतेयथागगनतलम् ।
तद्वत्प्रकृतिविकारैरपरामृष्टःपरःपुरुषः ॥ ३५ ॥

जैसे मेघ व धुवां व धूरिइन करिके आकाशयुक्त भी मलिन नहीहोतायोंही परम पुरुष ईश्वर मायाके गुणन करिके लिप्त नहीं होताहै ॥ ३५ ॥

एकस्मिन्नपिचघटेधूमादिमलाद्वृतेर्नघटाःशेषाः ।
नभवन्तिमलीमसातायद्वज्जीवोतद्वदिह ॥ ३६ ॥

जैसे एकघडा धूमके मैलसे मैलाभया तब सबघट मैल नहींहोते योंहीं जीव एक देहमे दुःखादि युक्त होताहै सबते दुःखी नहीहोता ॥ ३६ ॥

देहेंद्रियेषुनियताःकर्म्मगुणकुर्वतेस्वभोगार्थम् ।
नाहंकर्तानममेतिजानतःकर्मनैवबध्नाति ॥ ३७ ॥

गुण सत्वादिक देह इन्द्रिया मे सदा बसतेहैं जीवके भोगार्थ कर्मकरते हैं मे नही करता हूं मेरे कर्म नही हैं यह जानने वालेको कर्म नहीं बांधि सकतेहै ॥ ३७ ॥

अन्यशरीरेणकृतंकर्मभवेद्येनदेहउत्पन्नः ।
तदवश्यंभोक्तव्यंभोगादेवक्षयोस्यनिर्दिष्टः ॥ ३८ ॥

पूर्वजन्मके शरीर करिके कर्म कियेगये जिनकर्मोंमे देहउत्पन्नभई तीन कर्म अवश्य भोगकिया चाहिये वे कर्म भोगनेसे नाशहोते हे ॥ ३८ ॥

प्रागज्ञानोपचितंयत्कर्मज्ञानशिखिशिखारूढं ॥
बीजमिवदहनदग्धंजन्मसमर्थंनतद्भवति ॥ ३९ ॥

पहिले बिना जाने जो कर्म किया फिर ज्ञान उत्पन्न भया तो ज्ञानरूप अग्निमे जलिजाते फिरि जन्मनही दे सक्ते हैं जैसे अग्निमे जलाबीज नहीं जमता है ॥ ३९ ॥

ज्ञानोत्पत्तेरूर्ध्वंक्रियमाणंकर्मयत्तदपिनाम।
नश्लिष्यतिकर्तारंपुष्करपर्णंयथावारि ॥ ४० ॥

ज्ञानोत्पत्तिके उपरांत ज्ञानी जो कुछकर्म कर्ताहै तेहिकरिके लिप्त नहीं होता जैसे जल कमलके पत्ते मे नही लपटता है ॥ ४० ॥

वागदेहमानसैरिहकर्मचयःक्रियतइतिविबुधाःप्राहुः।
एकोपिनाहमेषांकर्तातत्कर्मणामस्मि ॥ ४१ ॥

पण्डित कहतेहैं वाणीमन देह ये कर्मकरते हैं ज्ञानी मानता है मै एक इन कर्मोको नहीकर्ताहूं ॥ ४१ ॥

कर्मफलबीजनाशाज्जन्मविनाशोनचात्रसन्देहः।
बुध्वैवमपागततमःसवितेवविभातिभारूपः ॥ ४२ ॥

जब कर्मफलके बीजोंको नाशभया तब जन्मको नाशकहूं जन्म नहींहोता है यहबात संदेह रहित है जो यह जानताहै सो सदा निजरूप सूर्य की भांति प्रकाशित रहताहै ॥ ४२ ॥

यद्वद्दिपीकातूलंपवनोद्धूतंदशदिशोयाति।
ब्रह्मणितद्वज्ज्ञातेतदेवकर्माणितत्वविदः ॥ ४३ ॥

जैसे मूजको धुवां पवनके वेगमे दशोदिशाको प्राप्त होजाताहै ऐसेही ब्रह्मज्ञान पैदाभये तत्ववेत्ताके कर्म उडिजातेहैं ॥ ४३ ॥

क्षीरादुद्धृतमाज्यंक्षिप्तंयद्वन्नपूर्ववत्तस्मिन्।
प्रकृति गुणेभ्यस्तद्वत्पृथक्कृतस्तत्रनात्मा ॥ ४४ ॥

दूधमे घृतकाढिलिया फिरि दूधमे छोडनेमे नहीं दूधमें मिलताहै तैसेही चैतन्य मायाके गुणोंमे जब अलगभया फिरि जीवत्वको नहीं प्राप्तहोताहै ॥ ४४ ॥

गुणमयमायागहनंनिर्दूययथातमःसहस्रांशुः।
बाह्याभ्यंतरचारीमेघवियोगेघनवद्भवेत्पुरुषः ॥ ४५ ॥

जैसे सूर्य अंधकार को दूरि करिके सबते प्रकाश करते है तैसेही पुरुष माया के गुणके वनको दूरि करिके बाहेर भीतर विचरता है जैसे मिघुका पहाड निर्मल होता है तैसे निर्मल रहिता है ऐसा होइ जाता है ॥ ४५ ॥

यद्वद्द्वावयवाःस्युर्देवतस्याविकारणातानि।
तद्वत्स्थावरजंगममद्वैतंद्वैतवद्भाति ॥ ४६ ॥

जैसे माटी से देह अंगमय घटादिको है सोपृथक् मालूम होते है तैसेही स्थावर जगम हैं अद्वैत द्वैत सो भासित होता है ॥ ४६ ॥

एकस्मात्चेवज्ञादिश्वरःचेनज्ञजातयोजाताः ।
लोहगिणादिवदहनात्मसंततोविस्फुलिंगगणाः ॥ ४७ ॥

एक ईश्वर क्षेत्रज्ञ से बहुत क्षेत्रज्ञ की जाती जीव रूप उत्पन्न होती हैं जैसे लोहगल रते जोअग्नि है तिनसे बहुत चिनगारी निकलती हैं ॥ ४७ ॥

तेगुणसंगमदोषावद्धाद्वधान्यजातयःस्वतुषैः ।
जन्मलभंतेतावद्यावन्नज्ञानवह्निनादग्धाः ॥ ४८ ॥

तेक्षेत्रज्ञजाती गुण के साथ दोष होनेसे बधे हैं तबलगे जन्म मरणको प्राप्त होते हैं जब तक ज्ञान अग्नि करिके नही जलते जैसे चाउर जवादिक भूषी से बंधे हैं तब तक जमते है भूषी अलग भय नही जमते ॥ ४८ ॥

चिगुणाचैतन्यात्मनिसर्वगतेऽवस्थिताखिलाधारे ।
कुरुतेसृष्टिमविद्यासर्वंचस्पृशतेनयानात्मा ॥ ४९ ॥

सबमें स्थित सबका आधार भूत आत्मा जो चैतन्य रूपतामें स्थित त्रिगुणात्मिका अविद्या रूपा माया सृष्टिको करती है परन्तु आत्मा को स्पर्श नही करसक्ती है ॥ ४९ ॥

रज्वांभुजंगहेतोप्रभवविनाशौयथानस्तः ।
जगदुत्पत्तिविनाशौनतत्कारणेस्तस्तद्वदिह ॥ ५० ॥

जिस उत्पत्ति विनाशको कारण सर्प है वह उत्पत्ति विनाश रज्जुमे नही होता है ऐसेही जगत को उत्पति विनाश जगत्कारण ईश्वर विषे नही होते हैं ॥ ५० ॥

जन्मविनाशनगमनागमनमलैःसंगविवर्जितोनित्यं ।
आकाशइवघटादिषुसर्वात्मासर्वतोपेतः ॥ ५१ ॥

सबसे अलग सबका आत्मा जन्म विनाश गमन आगम रूप मलोकरिके नित्यही रहितहै जैसे घटादि वस्तु विषे आकाश सबमे सबसे अलगहै ॥ ५१ ॥

कर्मशुभाशुभजनितैःसुखदुःखैर्योगोभवत्युपाधीनां ।
तत्संसर्गादिवस्तस्कारसंगादतस्करवत् ॥ ५२ ॥

पुण्य पाप कर्मो से उत्पन्न सुख दुख जिन करिके देहादिकों को संयोग

होता है तिन देहादिकों के संसर्ग से आत्मा भी बद्ध होताहै वस्तु से वद्ध नहीं है जैसे चोर चोरी किया बांधा गया चोरके संगी माता पिता चोरी नहीं की चोर बांधे जाते हैं ॥ ५२ ॥

देहगुणकरणगोचरसंगःपुरुषस्ययावदिहभवति ।
तावन्मायापाशैःसंसारइवाभाति ॥ ५३ ॥

जबतक जीवको देह इन्द्रिय विषय का साथ है तब तक संसार विषे माया की फंसरी करिके बंधा ऐसा मालूम होता है ॥ ५३ ॥

मातृपितृपुत्रबान्धवधनभोगविभागसंमूढः ।
जन्मजरामरणमयेचक्रइवभ्राम्यतेजंतुः ॥ ५४ ॥

माता पिता पुत्र बंधु धन भोगमें संयुक्त जीव जन्म मरण जरा रूप चक्र मेंभमा ऐसा घूमता है ॥ ५४ ॥

लोकव्यवहारक्षतांयइहाविद्यामुपासतेमूढाः ।
तेजननमरणधर्माणोन्धतमस्यत्रखिद्यंते ॥ ५५ ॥

जो अज्ञानी जीव लोकव्यवहार रूप अज्ञान में फसे रहते हैं तिनका जन्म मरण नहीं छूटता वे अन्धनरकमें प्राप्त होके दुःखी होते हैं ॥ ५५ ॥

हिमफेनबुद्बुदाद्वजलस्यधूमोऽग्नेयथावन्हेः ।
तद्वत्स्वरूपभूतामायैषाकीर्तिताविष्णोः ॥ ५६ ॥

जैसे जलमें सीतलता व फेना व बुल्ला होतेहैं वैसे अग्नि में धुंवा होता है तैसेही विष्णु की माया कही जातीहै ॥ ५६ ॥

एवंद्वैतविकल्पांभ्रमरूपांविमोहिनीमायां ।
उत्सृज्यसकलनिष्कलमद्वैतंभावयेद्ब्रह्म ॥ ५७ ॥

ऐसे द्वैत की कल्पना भ्रमरूप औ सब को मोहावती माया को छोड़ि के संपूर्ण कलाहीन अद्वैत ब्रह्म की भावना करै ॥ ५७ ॥

यद्वत्सलिलेसलिलंक्षीरेक्षीरंसमीरणेवायुः ।
तद्वद्ब्रह्मणिभावनयातन्मयत्वमुपयाति ॥ ५८ ॥

जैसे जलमें जल मिलि जाताहै दूध में दूध मिलि जाताहै वायु में वायु मिलिजातीहै तैसेही जीव भक्ति करिके ब्रह्मरूप होय जाता है ॥ ५८ ॥

इत्थंद्वैतसमूहेभावनयाब्रह्मभावमुपासते ।
कोमोहःकश्शोकस्सर्वंब्रह्मावलोकयतः ॥ ५९ ॥

इसी तरह से संसार विषे भक्ति करि के ब्रह्म की उपासना करते तिन को मोह व शोक नहीं होता वेसब ब्रह्म मय देखते हैं ॥ ५९ ॥

विगतोपाधिःस्फटिकःस्वप्रभयाभातिनिर्मलोयद्वत् ।
चिद्दीपःस्वप्रभयातथाविभातीहनिरुपाधिः ॥ ६० ॥

जैसे स्फटिक पत्थर का रंग छुडाइ डारो तो अपने तेज करिके निर्मल शोभा को प्राप्त होता है तैसेही चैतन्य दीप उपाधि रहित होने से अपने तेज करिके प्रकाशित होता है ॥ ६० ॥

गुणकरणगणशरीरप्राणैस्तज्जातसुखदुःखैः ।
अपरास्पृष्टाव्यापीचिद्रूपोहंसदाविमलः ॥ ६१ ॥

गुण सत्वादि इंद्रिय गण श्रोत्रादि शरीर प्राण इनसे उत्पन्न सुख दुःख से रहित व्यापक मल रहित चैतन्य रूप मै सदा हौ ऐसी मन मे भावना राखै ॥ ६१ ॥

द्रष्टाश्रोताघातास्पर्शयितारसयिताग्रहीताच ।
देहेन्द्रियधीविवर्जितःस्यान्नकर्तासौ ॥ ६२ ॥

देखता है सुनता है सुगन्ध को लेता है स्पर्श करता है रस को जानता है ग्राहक है ऐसा जो जीव है सो देहइन्द्रियसे अलग है कुछ नहीं करता है। ६२॥

एकोनैकश्चावस्थितोऽस्मैश्वर्ययोगतोव्याप्तः ।
व्याप्याकाशवदखिलंनकश्चिदत्रास्तिसन्देहः ॥ ६३ ॥

एक है औ आकाश की नाई सबमे स्थित है अहमैश्वर्य करिके सर्वत्र व्याप्त है इसमे कोई संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥

आत्मैवेदंसर्वंनिष्कलसकलंयदैवभावयति ।
मोहगहनाद्विमुक्तस्तदैवपरमेश्वरोभवति ॥ ६४

निष्कल कला रहित औ कला सहित जो कुछ है सो सब आत्माही है जो कुछ देखि मुनि पढनाहै यहबात जब २ भावना करै तब मोहसे छूटिजाता है परमेश्वर हो जाता है ॥ ६४ ॥

सिद्धान्तागमतर्कादिषुभ्रमंतियेयद्रागांधाः ।
अनुमोदामस्तेषांसर्वात्मवादिधिया ॥ ६५ ॥

सिद्धांत शास्त्र तर्कादिकों के विषे येरागांध होंइ के भ्रमत हैं तिनको सब विषे आत्मवादी जो बुद्धि है तेहि करिके हमप्रसन्न होते हैं ॥ ६५ ।

सर्वाकारोभगवानुपास्यतेयेनयेनभावेन ।
तंतंभावंभूत्वाचिन्तामणिवत्तमभ्येति ॥ ६६ ॥

सर्व स्वरूप भगवान हैं मनुष्य जिस २ रूप की भावना करते हैं वो उपासना करते हैं सोई सोई रूप धारण करिके भगवान प्राप्त होते हैं जैसे चिन्ता मणि पत्थर ॥ ६६ ॥

नारायणमात्मानंज्ञात्वासर्गस्थितिप्रलयहेतुम् ।
सर्वज्ञःसर्वभूतःसर्वःसर्वेश्वरोभवति ॥ ६७ ॥

जब जीव अपने को सृष्टि पालन संहार कर्ता जो नारायण तन्मय जानता है तब सर्वज्ञ हो जाता है सर्व स्वरूप सबमें मिला परमेश्वर को सबमें देखता है ॥ ६७ ॥

आत्मज्ञस्तरतिशुचंयस्माद्विद्वान्नबिभेतिकुतश्चित् ।
मृत्योरपिनरणभयंनभवत्यन्यत्कुतस्तस्य ॥ ६८ ॥

जिसको देखिके किसीको भय न उत्पन्न होय ऐसा आत्मज्ञ विद्वान् कभी शोचको नहीं प्राप्त होता और मरण से भय नहीं होती और भय कैसे होय ॥ ६८ ॥

क्षयवृद्धिवद्घातकवधनमोक्षैर्विवर्जितंनित्यं ।
परमार्थतत्वमेकंस्यातोऽन्यत्तदनृतंसर्वम् ॥ ६९ ॥

जिसका क्षय औ वृद्धि १ औ वध्य औ घातक २ औ बन्धमोक्ष ३ कोई नहीं है औ नित्य है ऐसा परमार्थ तत्त्व एक मुख्य तिससे अन्य पदार्थ सब झूठे हैं । ६९ ।

एवंप्रकृतिपुरुषंविज्ञायनिरस्तकल्पनाजालः ।
आत्मारामःप्रशमसमाश्रितःकेवलीभवति ॥ ७० ॥

यहि प्रकार ते माया व ईश्वर को जानने से कल्पना को जाल छूटि जाता है आत्माराम होयके शांति को प्राप्त निर्विकार होइ जाता है ५० ॥

नश्यन्ति कर्मविगुणगणा नश्यन्तियथास्वपुष्पमासाद्य ।
तद्वत्स्वभावभूताः स्व भावनाः प्राप्य नश्यन्ति ॥ ११ ॥

रामशर केला बांस ए जब फूले तब नाश होजाते हैं तैसेही जीव जब अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं तब मुक्त हो जाते हैं स्वभाव नाश होइ जाते हैं अपने स्वरूप को प्राप्त होइके ॥ ११ ॥

भिन्ने ज्ञानग्रंथौ छिन्ने संशयगणे शुभाशुभे क्षीणे ।
दग्धे च जन्मबीजे परमात्मानं हरिं याति ॥ १२ ॥

जब जीवको अज्ञान की गांठि छूटिजाती है संदेह नाश होइ जाता है पाप पुण्य क्षीण होइ जाते हैं कर्म रूप बीज जरिजाता है तब वह जीव परमात्मा को प्राप्त होइ जाता है ॥ १२ ॥

मोक्षस्य नैव किंचिद्धामास्ति न चापि गमनमन्यत्र ।
अज्ञानमयग्रंथेर्भेदो यस्तं विदुर्मोक्षं ॥ १३ ॥

मोक्षका कोई घर नहीं है और न कहीं और ठौर में जाना है जो अज्ञान की ग्रंथि का छूटना है सोई मोक्ष है यह बात महात्मा कहि गये हैं ॥ १३ ॥

बुद्ध्वैवमसत्यमिदं विष्णोर्मायात्मकं जगद्रूपं ।
विगतद्वंद्वोपाधिर्भोगासंगो भवेच्छांतः ॥ १४ ॥

विष्णु की माया मय ऐसा यह जगत् रूप झूटा जानि के द्वैत उपाधि छोड़ि देय भोगमें संग न करै तौ शांत चित्त होय ॥ १४ ॥

बुद्ध्वाविभक्तां प्रकृतिं पुरुषः संसारमध्यगो भवति ।
निःसंगः सर्वकर्मभिरंबुजपत्रं यथा सलिलैः ॥ १५ ॥

संसार के बीच में टिका जो जीव हैं सो माया को अपना से अलग जाने तौ सब कर्मों से छूटि जाइ जैसे कमलका पत्ता जलमें रहता है जल करिके लिप्त नहीं होता है ॥ १५ ॥

त्यक्त्वाकर्मविकल्पानात्मस्थंमनःकेवलंकृत्वा ।
दग्धेन्धनद्रववन्हिःसर्वात्माभवेच्छान्तः॥ ७६ ॥

जब आत्मा विकल्पों को छोडिके मनको आत्मा विषे लगाता है तब सब ते शांत रूप होइ जाता है जैसे ईंधन जरि गया तब अग्नि शांत होइ जाता है ॥ ७६ ॥

अदनंयद्यातद्यावन्नीतोयेनकेनचिच्छान्तः ।
यत्रक्वनशायीविमुच्यतेसर्वभूतात्मा ॥ ७७ ॥

जो पाया सो भोजन करलिया जो कोई ल्यवाइ गया तहां चला गया जहां पाया तहा सोयरहा ऐसा शांतरूप सबजीवन को आत्मा होजाता है संसारसे छूटिजाता है । ७७ ॥

हयमेधशतसहस्राण्यपि:कुरुतेब्रह्मघातलक्षाणि ।
परमार्थविन्नपुण्यैर्नचपापैःस्पृश्यतेविमलः ॥ ७८ ॥

ब्रह्मज्ञानी हजार अश्वमेधकरै पुण्यकरिकै युक्तनहींहोता हजारों ब्राह्मणमारै पापकरिकै युक्त नहीं होता सदानिर्मल रहताहै ॥ ७८ ॥

मदक्रोधहर्षमत्सरविषादभयपरुषवर्ज्यवाक्बुद्धिः ।
निस्तोत्रवषट्कारोजडवद्विचरेद्गाधमतिः ॥ ७९ ॥

जो ज्ञानी बडा बुद्धिमान् न तो मतवार रहै न रिसकरै न खुशी होय, न किसीका द्रोह करै न विषादकरै न डिराय न कडी बात कहै नपाठ करै न मत्र जपै जडकी तरह घूमै । ७९ ॥

उत्पत्तिनाशवर्जितमेवंपरमार्थमुपलभ्यकृतकृत्यः ।
सफलजन्मासर्वगतस्तिष्ठतियथेष्टम् ॥ ८० ॥

जिसका उत्पत्ति विनाश नहीं ऐसे परमात्मा को प्राप्त होइके कृतार्थ हो अपना जन्म सुफल करता है स्वेच्छा पूर्वक बसता है ॥ ८० ॥

व्यापिनमभिन्नमित्यंसर्वात्मानंविगतनानात्वं ।
निरुपमपरमानंदंयोवेदसतन्मयोभवति ॥ ८१ ॥

सबमें व्यापी सबसे भिन्न नहीं सबका आत्मा नानात्व जिसको नहीं ऐसे परमात्मा को जो जानता है सो परमात्महोजाता है ॥ ८१ ॥

तीर्थेश्वपचगृहेवानष्टस्मृतिरपिपरित्यजन्देहं ।
ज्ञानीसमकालमुक्तःकैवल्यंयातीहविगतशोकः ॥ ८२ ॥

जिसको कुछ सुधि नहीं है ऐसे ज्ञानीका देह तीर्थ में वा डोमके घरमें छूटिजाइ तो केवल ब्रह्म को प्राप्त होय कोई शोक न होय ज्ञान उत्पन्न होते मुक्त हो जाता है ॥ ८२ ॥

पुण्यायतीर्थसेवानिरयायश्वपचनिधनगतिः ।
पुण्यायपुण्यफलंयस्यस्पर्शोभावितुकिमेतेन ॥ ८३ ॥

तीर्थ सेवा से पुण्य होती है स्वपचके घर मरने से नरक होता है जिसको पुण्य वा पाप को स्पर्श नहीं है तो पुण्य पाप का फल स्वर्ग नरक कैसे होय ॥ ८३ ॥

इत्याग्राच्च्युतपादोयद्वदनिच्छन्नरःपतति ।
तद्वद्गुणपुरुषज्ञोप्यनिच्छन्नपिकेवलीभवति ॥ ८४ ॥

जैसे वृक्षके ऊपर चढ़ा मनुष्य डारश्फिरते पाउ सकिला भूमिमें गिरि पड़ता है औ गिरने की इच्छा नहीं है तैसेही प्रकृति पुरुष का बिभाग जानने वाला चाहे इच्छा करै चाहे इच्छा न करै केवल ब्रह्मरूप होइ जाइगा ॥ ८४ ॥

परमार्थमार्गसाधनमभ्यस्याप्यप्राप्ययोगमपिनाम ।
सुरलोकभोगभोगीमुदितमनामोदतेसुचिरम् ॥

मोक्ष साधन मार्ग में अभ्यास करिके योग में प्राप्त होइके बहुत दिनतक इंद्र लोकमें भोग कर्ता है और आनंदित होता है । ८५ ॥

विषयेषुसार्वभौमःसर्वजनैःपूज्यतेयथाराजा ।
भुवनेषुसर्वदेवैर्योगभ्रष्टस्तथापूज्यः ॥ ८६ ॥

जैसे अखिल मंडलेश्वर राजा को सब देश बासी पूजते हैं तैसेही योगभ्रष्ट को चौदहौं भुवन बिषे ये देवता गणहैं ते सब पूजा करते हैं । ८६ ।

महताकालेनपुमान्मानुष्यंप्राप्ययोगमभ्यस्य ।
प्राप्नोतिदिव्यमम्रतंयत्तत्परमंपदंविष्णोः ॥ ८७ ॥

वह योग भ्रष्ट बहुत दिन स्वर्ग भोग करिके मनुष्य योनिमें पैदा होइके फिरि योगाभ्यास करिके जो अविनाशी विष्णुपदहै तिस्को प्राप्त होइ जाताहै ॥ ८७ ॥

वेदान्तशास्त्रमखिलं विलोक्य शेषस्तु जगदाधारः ।
आर्य्यापञ्चाशीत्यावबंध परमार्थसारमिदं ॥ ८८ ॥

जगतके धारण कर्ता शेष सम्पूर्ण वेदांत शास्त्र को देखिकै पचासी आर्य्या छंद करिकै यह परमार्थसारको प्रबन्ध किया ॥ ८८ ॥

इति श्रीपरमार्थसार भाषाटीकासहित सम्पूर्णम् ॥
सम्वत् १९३२